लाभ कमाने के लिए स्कूल चलाने की छूट देने का पक्ष

श्रीधर राजगोपालन

लेखक परिचय :

इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी, मद्रास से बीटेक, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट से पीजीडीएम, टाटा आईबीएम के साथ तीन वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् 'एकलव्य इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर एज्युकेशन' के संस्थापक सदस्य।

संप्रति : दिल्ली स्थित 'एज्युकेशन इनिसिएटिव' के प्रबंध निदेशक

सम्पर्क :

एज्युकेशन इनिसिएटिव प्रा.लि.

तीसरी मंजिल, लक्ष्यदीप प्लाजा, ए-252 ए, संत नगर, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली - 65

इस आलेख में मैं पक्ष यह प्रस्तुत करूंगा कि लाभ कमाने वाली संस्थाओं को स्कूल चलाने की अनुमति क्यों देनी चाहिए। शुरुआत मैं यह कहने के साथ करना चाहूंगा कि कुछ समय पहले तक मैं भी निजी लाभ कमाने वाली संस्थाओं द्वारा स्कूल चलाने के विरुद्ध था। आज भी मैं अधिकांश समूहों के प्रति विशेष सहानुभूति नहीं रखता जो पैसा कमाने के लिए स्कूल चलाते हैं। फिर भी मेरा मानना है कि लाभ कमाने वाली संस्थाओं को स्कूल चलाने से रोकने का जो नया कानून है उसे संशोधित किया जाना चाहिए।

अपने नजरिए को संक्षेप में एक ही अनुच्छेद में समेटते हुए मैं कहना चाहूंगा कि शिक्षा की समस्या बेहद विशाल और चुनौतिपूर्ण है तथा हमें इसके समाधान में यथासंभव ऊर्जा लगानी चाहिए। लाभ कमाने वाली संस्थाओं को स्कूल चलाने की अनुमति देने का अर्थ होगा जनसंख्या के अधिक बड़े भाग को इस समस्या से जूझने देना। लाभ की इच्छा रखने वाले अपने साथ आवेश, विशेषज्ञता और नवाचार लाते हैं तथा इस प्रक्रिया में जिनमें गुणवत्ता की कमी हो उन्हें झकझोरते हैं, खासकर तब जब एक सरल व पारदर्शी नियमन व शिकायत तंत्र मौजूद हो।

जिन कारणों से मैं लाभ कमाने वालों को स्कूल चलाने की छूट दूंगा वे रूढ़िगत नहीं हैं। अगर आप निजीकरण के किसी सेमिनार में जाएं तो आप सुनेंगे कि सरकार कुछ भी सुचारू और सफल रूप से नहीं चला सकी है, अतः आपको निजीकरण की जरूरत है। या महज इतना भर कि सब कुछ का निजीकरण होना चाहिए, मय शिक्षण के। और अंत में अर्थक्रियात्मक तर्क भी तो है, क्योंकि लाभ के लिए स्कूल नहीं चलाने के कानून का असल में खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन हो रहा है, इस कानून को बदल देना चाहिए। पर मेरे कारण दूसरे ही हैं।

मैं यहां यह स्पष्ट कर दूं कि मैं गत साढ़े पांच वर्षों से एक स्कूल एवं शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज की शुरुआत करने और उसे चलाने में जुड़ा रहा हूं (जो अपने स्वरूप व आत्मा में गैर-लाभकारी है)। यह उस युग से पहले की बात है जब स्कूल शुरू करने को एक फायदेमंद धंधे के रूप में देखना 'फैशनेबल' था। पिछले छह सालों से मैं एक लाभ कमाने वाली कम्पनी भी चलाता रहा हूं जो स्कूली शिक्षा से गहराई से जुड़ी है - और मुझे यह भी स्पष्ट करने दें, पर जिसकी स्कूल शुरू करने या उन्हें चलाने में कोई रुचि नहीं है।

1. जब आप 'मुनाफा कमाने' का जुमला सुनते हैं तो क्या सोचते हैं ?
2. गैर-लाभकारी संस्थाओं (नॉन प्रौफिट) के साथ समस्या
3. मुनाफा कमाने वाली संस्थाएं (फॉर प्रौफिट) सामने क्या रखती हैं ?
4. मुनाफा कमाने वाला मॉडल संरचनात्मक रूप से बेहतर क्यों है ?
5. मुनाफा कमाने के विरुद्ध आम आलोचना के प्रत्युत्तर
6. निष्कर्ष

1. जब आप 'मुनाफा कमाने' का जुमला सुनते हैं, तो क्या सोचते हैं ?

पिछले साल भर में मुझे एक बेहद रोचक व आसानी से समझ न आने वाली बात का अहसास हुआ है। वह यह कि जब हम भारत में 'लाभ कमाने वाली कम्पनी' कहते हैं तो इसका अर्थ कई दूसरे देशों से बिल्कुल भिन्न लिया जाता है। खासतौर से आज भारत में, शायद विगत 50-60 सालों में जो कुछ हुआ है उसके कारण, हम यह मानते हैं कि 'मुनाफा कमाने' वाले प्रतिष्ठान महज मुनाफाखोरी के लिए ही अस्तित्व में होते हैं। साथ ही वे हर तरह की धांधली करते हैं, जिन्हें नियुक्त करते हैं उनका शोषण करती हैं और उपभोक्ताओं को भी लूटते हैं। भारत में यही हमारे मानस में बसा है। यह कुछ ऐसा है मानो हम कह रहे हों कि अगर कम्पनी लाभ कमाने वाली है तो जो सी.के. प्रहलाद ने कहा वही उसकी सबसे सटीक व्याख्या हो सकती है। उन्होंने कहा था 'जिस देश से मैं आता हूं वहां धंधे-व्यापार का मतलब है छल-कपट।'

सो यह कुछ ऐसी बात है, जो शायद हमारे अवचेतन में बसी है, जिसे हमें पहचानने की जरूरत है। यह भी रोचक है कि अधिकांश पश्चिमी समाजों में मुनाफे के प्रति नजरिया बिल्कुल ही भिन्न है। वह नजरिया यह है कि व्यापारिक प्रतिष्ठान समाज के मूल्य में इजाफा करते हैं, जीवन की गुणवत्ता को सुधारते हैं। सबसे श्रेष्ठ धंधे वे हैं जो सफल हैं और नैतिक भी। दान देने की संस्कृति मजबूती से स्थापित है - वहां यह सम्भावना उतनी ही है कि कोई बड़ा उद्योगपति किसी विश्वविद्यालय को अपना धन दान दे जितना कि वह धन अपने बच्चों को दे (इसमें उत्तराधिकार कर भी देय है)। शायद इससे वस्तुस्थिति को सकारात्मक रूप में देखने में भी मदद मिलती है।

इस तरह का सोच भारत के लिए भी अजाना नहीं। बौद्ध विचारधारा में 'सम आजीविको' की बात है, जहां आप यह कहते हैं कि आजीविका कमाने का अपना तरीका ऐसा होना चाहिए जो किसी दूसरे को तकलीफ या नुकसान न पहुंचाए। कहने का तात्पर्य यह है कि अगर इन चीजों का ख्याल रखा जाए तो व्यापार-धंधे मे कोई खराबी नहीं है, बल्कि यह समाज की सेवा का एक रास्ता है। महात्मा गांधी का न्यासिता का सिद्धान्त भी इससे काफी मिलता-जुलता है।

जाहिर है कि लाभ कमाने वाली संस्थाओं के प्रति हमारा दृष्टिकोण उनकी भूमिका के विषय में हमारे अवचेतन दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। मुझे यह दूसरा नजरिया पसन्द है - और केवल इस कारण ही नहीं क्योंकि मैं स्वयं एक धंधा चलाता हूं - बल्कि इसलिए भी कि यह 'दूसरे लोगों' को देखने का एक सकारात्मक नजरिया है।

2. गैर-लाभकारी संस्थाओं के साथ समस्या

लाभ कमाने वाली संस्थाओं को स्कूल चलाने की अनुमति देने के पक्ष में मेरा पहला तर्क यह है कि वे अमूमन संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग करते हैं। ऐसा शायद इसलिए होता है क्योंकि उन्हें ठीक उन्हीं लोगों से ये संसाधन कमाने पड़ते हैं जो उनकी सेवाओं का उपयोग करते हैं। मुझे इसका काफी अनुभव है। सन 2001 के गुजरात भूकम्प के दौरान हम गुजरात में स्कूल भवनों के पुनर्निमाण के काम से जुड़े थे। हमारे पास जो धन उपलब्ध था उसके चलते हम सीमेन्ट और स्टील के आपूरकों (सप्लायर्स) से बढ़िया मोल-भाव कर सके। हमारे अध्यक्ष, जो स्वयं एक कम्पनी के भी प्रमुख थे, ने बताया कि जब उन्हें ये चीजें एक निगम के रूप में खरीदनी पड़ती थीं, तो उनके पास उपलब्ध राशि काफी कम होती थी और उन्हें इतनी सुविधाजनक शर्तों पर माल नहीं मिल पाता था।

सम्भवतः गुजरात अनुभव का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता, पर मेरे पास दूसरे उदाहरण भी हैं। एक अनुभव है जब मुझे एक गैर-लाभकारी संस्था के न्यासी के रूप में मुम्बई बुलाया जाता है। मैं अमूमन उड़ कर जाता हूं, पर आज भी अपनी छोटे प्रतिष्ठान का एम.डी. (प्रबंध निदेशक) होने के बावजूद मैं ट्रेन या किसी अधिक सस्ते तरीके से यात्रा करता हूं। मुझे लगता है कि जवाबदेही और बेहतर वित्तीय नियंत्रण लाभ कमाने वाले प्रतिष्ठानों को गैर-लाभकारी संस्थानों की तुलना में संसाधनों का बेहतर उपयोग करने को मजबूर करती है।

मेरा दूसरा तर्क यह है कि गैर-लाभकारी मॉडल एक टिकाऊ मॉडल नहीं है। मैंने स्वैच्छिक गैर-लाभकारी संस्थाओं को अपने अस्तित्व के 15-20 सालों तक अच्छा काम करते देखा है। फिर भी वे हमेशा दाता संस्थाओं के रहम पर जीती हैं। ऐसी संस्थाओं का एक समाधान है एक नए क्षेत्र में दक्षता पैदा करना - यह क्षेत्र है चन्दा जुटाने का - जिसका मतलब यह भी होगा कि, आप एक अर्थ में अपने केन्द्रीय क्षेत्र से ध्यान हटाएंगे। लाभ कमाने वाले का केवल एक चुनाव क्षेत्र होता है - उनके ग्राहक - और उनके प्रशिक्षण, बिक्री, ग्राहक शिक्षण के सारे प्रयास इसी समूह की ओर केंद्रित होते हैं, इसीलिए सह-क्रियाशील भी होते हैं।

सामाजिक उद्देश्यों की सेवा का मॉडल : प्रसंगवश मैं मानता हूं कि गैर-लाभकारी संस्थाओं को अपने लक्ष्य व दिशादृष्टि के अनुरूप काम करते चलना चाहिए, परन्तु उनकी कार्यशैली मुनाफा कमाने वाले मॉडल वाली होनी चाहिए। उदाहरणार्थ विकलांगता के लिए काम करने वाली किसी गैर-लाभकारी संस्था को, मेरा मानना है, एक निजी कम्पनी शुरू कर इस क्षेत्र में काम करना चाहिए। दानदाताओं से अनुदान मांगने के बदले उसे उन लोगों से शुल्क

वसूलना चाहिए जिनके लिए वह काम कर रही हो या उन लोगों से जो इस मुद्दे के समर्थक हों। संस्था अपना मिशन स्पष्ट कर सकती है (जैसा हमने, लाभ कमाने वाली कम्पनी होने के बावजूद किया है) कि 'अगर संस्था बिना प्रभाव छोड़े मात्र व्यावसायिक रूप से सफल रहती है तो इसे असफलता माना जाएगा। यह अभिगम गैर-लाभकारी संस्था को अपनी वित्तीय-व्यावहारिकता का मूल्यांकन करने तथा अपने प्रभाव को मापने को प्रेरित करेगा। और दूरगामी अर्थों में उसे अधिक टिकाऊ भी बनाएगा।

3. मुनाफा कमाने वाली संस्थाएं सामने क्या रखती हैं ?

अब तक के तर्क गैर-लाभकारी मॉडल की कमजोरियों पर ध्यान देते हैं और जो दरअसल सकारात्मक तर्क नहीं हैं। सकारात्मक बिन्दुओं को प्रस्तुत करने के पूर्व मुझे यह स्पष्ट करने दें कि मैं यह नहीं मानता कि मुनाफा कमाने वाली संस्थाओं का प्राथमिक लक्ष्य लाभ है। अधिकांश लोगों को विरोधाभासी लगने के बावजूद, यह बात यह कहने से अलग नहीं है कि, बिना ऑक्सीजन के हम जी नहीं सकते, परन्तु हमारे जीने का लक्ष्य, सांस लेना नहीं है। किसी कम्पनी के लिए लाभ ऑक्सीजन के समान है - अस्तित्व के लिए आधारभूत जरूरत, पर निश्चित रूप से लक्ष्य नहीं। मैं निगमों के जो लक्ष्य मानता हूं, उन्हें समझाने के लिए हमें उन सकारात्मक पक्षों को देखना होगा जो वे हमारे सामने रखते हैं।

पहली बात जो कोई उद्यमी मेज पर रखता है वह है 'अपने काम और लक्ष्य के प्रति भावावेश'। यह बात किसी संस्था में कार्यरत हरेक कार्यकर्ता पर लागू नहीं होती और अगर संस्था का स्तर घटिया हो तो यह कम से कमतर लागू की जा सकती है, पर यह कई उद्यमियों पर लागू होती है जिनके पास तमाम आसान 'सवैतनिक काम' के विकल्प होते हैं, जिन्हें वे चुनने से इन्कार कर देते हैं। (कई दृष्टान्तों में उद्यमी या निगम, अस्तित्व या मुनाफे के संकरे लक्ष्यों से शुरुआत करते हैं, पर वे उच्चतर लक्ष्यों जैसे श्रेष्ठता, नेतृत्व के पद पाना आदि की ओर बढ़ते हैं, जो इस आवेश के प्रतिनिधि हैं)।

दूसरी चीज जो निगम प्रस्तुत करते हैं वह है विशेषज्ञता, और मैं कहूंगा कि उनमें से कई इस विशेषज्ञता को भलीभांति संस्थागत रूप भी दे पाते हैं। शिक्षा के संदर्भ में कहें तो एक ऐसी संस्था की कल्पना करें जिसे प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण की गहन विशेषज्ञता हो, और किसी दूसरे की मूल्यांकन में, तीसरे की विशेष (स्पेशल) शिक्षा में - इसी की तो आज जरूरत है। ऐसा नहीं है कि किसी गैर-लाभकारी संस्था में यह करना असम्भव हो, पर कई कारणों से मुनाफा कमाने वाली संस्था में ऐसा होने की सम्भावना अधिक है।

निगमों का तीसरा योगदान है नवाचार - किसी मौजूदा समस्या को नई तरह से देखना। भारत में इसके हालिया उदाहरण दूरसंचार व हवाई यात्रा के क्षेत्र में मिलेंगे। परन्तु दुनिया भर में यह पाया गया है कि सार्वजनिक शिक्षण और निजी शिक्षण में लगभग समान संसाधनों का उपयोग होता है पर निजी शिक्षण में उसका उपयोग अधिक प्रभावी होता है।

लाभ कमाने वाले संगठनों का चौथा फायदा यह कि उनके पास लक्ष्य निर्धारण, नियोजन व प्रक्रियाएं होती हैं। लग यह सकता है कि यह गौण मसला है, पर मुझे लगता है कि कामकाज में इनसे भारी फर्क पड़ता है। लक्ष्य निर्धारण हमें फैलने के लिए धकियाता है और नियोजन से अनुशासन आता है और प्रक्रिया व्यक्तियों पर निर्भरता को कम करती है। इसका विपरीत अभिगम यह है कि महज कटिबद्धता भर से फर्क पड़ सकता है। यद्यपि यह जरूरी नहीं है फिर भी कई गैर-लाभकारी संस्थाएं अपने काम को इसी तरह से देखती हैं।

कोई भी क्षेत्र तब तक पनप नहीं सकता जब तक उस क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ दिमाग उसमें न लगें। अधिकांश लोग उन क्षेत्रों या नौकरियों को चुनते हैं जहां उन्हें अच्छी तनख्वाह मिलती है। व्यावहारिक रूप में यह एक भारी फायदा है जो लाभ कमाने वाली संस्थाओं को होता है क्योंकि वे अधिक वेतन दे पाते हैं। यद्यपि गैर-लाभकारी संस्थाओं के अधिक कटिबद्ध सदस्य होते हैं, श्रेष्ठ लोगों को आकर्षित करना भी जरूरी होता है और यह काम लाभ कमाने वाली संस्थाएं बेहतर कर सकती हैं।

स्पर्धा में भी काफी कुछ सकारात्मक होता है, क्योंकि यह आपको अपना श्रेष्ठतम करने पर बाध्य करती है और आपको चौकन्ना रखती है। साथ ही सशक्त विचारों का पारस्परिक-परागण भी होता है, तब जब दो उम्दा संगठन (या व्यक्ति) एक दूसरे के विरुद्ध भिड़ते हैं।

4. लाभ कमाने वाला मॉडल संरचनात्मक रूप से बेहतर क्यों है ?

वह क्या है जो लाभ कमाने वाली संस्थाओं को गैर-लाभकारी संस्थाओं से इन तमाम आयामों में बेहतर बनाता है - क्या ये गुण गैर-लाभकारी संस्थाओं में विकसित नहीं हो सकते ? मुझे लगता है मुनाफा कमाने वाले मॉडल की कुछ अंतर्निहित मजबूतियां हैं :

(i) मानव स्वभाव : लाभ कमाने वाले संगठन व्यक्तिगत हित तथा व्यापक हित के बीच अधिक प्रभावी तालमेल बैठा पाते हैं। थोड़ी-सी सफलता का स्वाद लेते ही इन्सान अपने नजरिए में अधिक व्यापक और कभी-कभार अधिक परोपकारी बन जाता है, परन्तु अपने व्यवसाय (कैरियर) के शुरुआत में काफी लोग असुरक्षित महसूस करते और ऐसी भूमिकाएं चुनते हैं जो आर्थिक रूप से आकर्षक हों।

(ii) लाभ कमाने वाले प्रतिष्ठान में जिस समूह के साथ व्यक्ति काम करता है, जिससे उसे 'फीडबैक' मिलता है और जो सेवाओं के लिए वेतन देता, वह एक ही होता है - यह मॉडल इसलिए बेहतर है क्योंकि फीडबैक अधिक शीघ्रता से मिलता है और अधिक सटीक भी होता है।

(iii) नवाचार और श्रेष्ठता के लिए विवेक से काम में लिए जा सकने वाला लाभ आवश्यक है : जैसा बिल गेट्स ने कहा, विवेकाधिकार लाभ शोध और नवाचार में काम में लिए जा सकते हैं। एक ऐसी चीज तलाशने के लिए जो सफल सिद्ध हो। आपको दसियों ऐसी चीजों के साथ भी प्रयोग करने पड़ते हैं जो विफल हो जाती हैं। यह बात मैं हमारे निजी अनुभव से भी कह सकता हूं, अगर आप कोई गैर-सरकारी संस्था हैं और किसी दाता संस्था से अनुदान चाहते हैं तो वे उन प्रयोगों के लिए आपको अनुदान नहीं देंगे जिनके सहारे आप अपने सवालों के जवाब ढूंढ़ सकें। पर आप लाभ से ऐसा कर सकते हैं। अगर मेरे पास लाभ की राशि होती है तो मैं दस चीजों के साथ प्रयोग करता हूं ताकि मुझे वह एक मिल जाए जो कारगार हो, पर अगर मैं ये प्रयोग न करूं तो मुझे कारगर उपाय भी न मिलें। जाहिर है प्रयोगों के इस चक्र को अनुदान की जरूरत है और लाभ इसका सबसे अच्छा तरीका है।

5. मुनाफा कमाने के विरुद्ध आम आलोचना के प्रत्युत्तर

लाभ कमाने की इच्छा रखने वाली संस्थाओं के विरुद्ध एक तर्क यह दिया जाता है कि व्यावसायिक प्रतिष्ठान - किसी क्षेत्र में काम केवल तब प्रारंभ करता है जब वहां स्पष्ट लाभ सुनिश्चित हो। मुझे नहीं लगता कि यह बात सच है। मुझे लगता है कि कई ऐसे व्यवसाय हैं जो नवाचार करते हैं। और ऐसे तमाम क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रतिष्ठान घुसे हैं, जिनमें परम्परागत बुद्धि से लाभ की सम्भावना मानी ही नहीं जाती थी। मैं तर्क यह करना चाहूंगा कि प्रत्येक सफल व्यवसाय उसी क्षेत्र में होना चाहिए जिसके लिए परम्परागत रूप से यह कहा जाता हो कि यहां पैसा नहीं बनाया जा सकता।

मैं यहां एक ऐसे व्यक्ति के कथन को उद्धृत करना चाहूंगा जो एक बड़े जलपोत निर्माण कम्पनी से जुड़े थे, जिसे उन्होंने शुरू किया था और कई लोग उनके कहे पर विश्वास करते हैं...। उन्होंने कहा था ''हमें उम्दा से उम्दा जहाज बनाने हैं। सम्भव हो तो लाभ के लिए, पर सम्भव न हो तो नुक्सान उठा कर भी। पर उम्दा जहाज हमें बनाने ही हैं।'' ऐसे तमाम उदाहरण हैं जहां कम्पनियों ने अपना भविष्य दांव पर लगाया है, जब उन्होंने कहा है कि हमें यह करना है, इस क्षेत्र में करना है, क्योंकि वे उसके प्रति कटिबद्ध व आवेश से भरे थे। आपको पता होगा कि आईबीएम ने ठीक यही किया था। जब उन्होंने आईबीएम 360 मशीन बनाई थी। उन्होंने कहा था कि अगर यह मशीन असफल रहती है तो वे भी असफल होंगे, एक कम्पनी के रूप में वे पूरी तरह डूब जाएंगे। पर उनका कहना था कि उनका मिशन दुनिया के श्रेष्ठतम कम्प्यूटर बनाना है। सो ऐसे तमाम उदाहरण हैं जहां लाभ कमाने की इच्छा रखने वाली कम्पनियां केवल लाभ द्वारा प्रेरित नहीं होतीं, वरन उनकी एक अधिक व्यापक दिशादृष्टि होती है, या लक्ष्य होता है। जोखिम उठाने की यह वृत्ति ही नए समाधानों तक ले जाती है।

5. निष्कर्ष

यद्यपि मैंने हर चरण में इसे साफ-साफ उभारा नहीं है, परन्तु ऊपर जो कुछ कहा गया उसका शिक्षा से स्पष्ट सम्बन्ध है। शिक्षा के लिए हमें आवेश की, विशेषज्ञता की और नवाचार की जरूरत है। जरूरत है कि देश के श्रेष्ठतम दिमाग इस विशाल चुनौती को सम्बोधित करें। और यह सब लाभ कमाने की इच्छा रखने वाला क्षेत्र कर सकता है।

इस बीच मैं इस विचार से पूरी तरह से सहमत हूं कि सबके लिए शिक्षा का प्रावधान करना राज्य का दायित्व है। सो मैं यह नहीं कह रहा कि गैर-लाभकारी संस्थाओं को स्कूल चलाने की छूट ही न दी जाए। आज हो यह रहा है कि तमाम कम लागत वाले, लाभ कमाने वाले स्कूल चलाए जा रहे हैं, जिनकी हमें कोई जानकारी तक नहीं है। जैसे हैदराबाद में 600 ऐसे स्कूल हैं जिनके अस्तित्व का ही आपको पता न होगा, वे सरकारी रिकार्डों तक में दर्ज नहीं हैं। सो वहां के विद्यार्थी या तो नामांकित ही नहीं हैं या फिर सरकारी स्कूलों में नामांकित दिखाए जाते हैं। सो होता यह है कि वे भी शिक्षा व्यवस्था का अंग बन जाते हैं। सरकार इन बच्चों की शिक्षा के लिए भी जिम्मेदार बन जाती है। हम उनका न्यूनतम नियमन तो कर सकते हैं, यह सम्भव है कि हम उनके कार्य प्रदर्शन आदि पर नजर रखें। आज जो हो रहा है वह यह है कि लाभ कमाने वाली संस्थाएं शिक्षा के काम में जुटी तो हैं, पर सरकार की दृष्टि से ओझल हैं और इस मामले में सरकार अपनी जिम्मेदारी से भी बच जाती है। सो अगर आप इन शैक्षणिक संस्थाओं को वास्तव में कानूनी बना डालें, तो आप इन संस्थाओं की गुणवत्ता के लिए सरकार को जिम्मेदार भी ठहरा सकेंगे। जाहिर है इस तर्क के आधार पर भी इन्हें शिक्षा देने की अनुमति देने का औचित्य बनता है।

मैं न्यू कार्नेगी के एक उदाहरण से बात खत्म करना चाहूंगा, जो महात्मा गांधी ने कहा उसके समान लगती है। उन्होंने कहा था, ''तो यह एक सम्पन्न व्यक्ति का फर्ज माना गया है कि, अव्वल तो वह एक सादा, बिना तड़क-भड़क वाला जीवन जिए, दूसरे वह अपने पर निर्भर लोगों की जायज जरूरतों के लिए प्रावधान करे; और यह करने के बाद जो अतिरिक्त राशि हो उसे... न्यास कोष का हिस्सा माने जिसका प्रबन्धन उसे करना है... ताकि समुदाय के लिए सबसे लाभदायक नतीजों का उत्पादन हो।'' ◆

भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा